न दु:ख दो, न दु:ख लो

• ब्रह्माकुमार दिनेश, हाथरस

अक्सर परमपिता परमात्मा शिव द्वारा, प्रजापिता ब्रह्मा के श्रीमुख से इन मधुर वचनों का प्रवाह झरता है – बच्चे, 'न दु:ख देना, न दु:ख लेना'। बाबा कहना चाहते हैं कि बच्चे, तुम दु:खहर्त्ता और सुखकर्त्ता की संतान हो तो दूसरों के दु:खों को हरने की युक्ति बताओ या हरो लेकिन अपने आपको दु:खी न करो। न ही किसी को मन, वचन और कर्म से दु:ख दो।

संसार को दु:खों से पीड़ित देखकर एक संत तपस्या में बैठे। भगवान प्रसन्न हुए और वर माँगने को कहा। उन्होंने कहा, भगवन्! समस्त संसार के दु:खों को दूर करने का उपाय बतायें। भगवान ने कहा, अगर तुम चाहो तो इनके दु:ख खुद अपने ऊपर ले सकते हो। संत भगवान से वरदान लेकर आगे बढ़े। रास्ते में एक कस्बे में उन्हें एक किसान, पैर के दर्द से कराहते हुए मिला। संत ने उसके पैर को हाथों से सहलाया और वह ठीक हो गया लेकिन संत के पैरों में दर्द आरंभ हो गया। उन्होंने उसे झेला। खबर सारे कस्बे में फैल गई। अब तो संत के सामने अपनी-अपनी समस्याओं को लेकर आने वालों की भीड़ लग गई। एक कैंसर पीड़ित आया। संत ने उसके शरीर पर हाथ घुमाया, वह भी कैंसर के दर्द से मुक्त हो गया पर संत को कैंसर जैसी भयंकर पीड़ा झेलनी पड़ी। संत ने एक अंधे की आँखों पर हाथ घुमाया तो उसे दिखाई देने लगा परंतु वरदान के प्रभाव से संत को दिखाई देना बंद हो गया। उपस्थित भीड़ संत की जय-जयकार कर रही थी। तभी एक शव यात्रा निकली। किसी का अकेला पुत्र अल्पायु में शरीर छोड़ गया था। 'बाबा की जय हो', कहकर पुत्र के माँ-बाप संत के पैरों पर गिर पड़े। मृत शरीर पर हाथ फिराने के बाद तो संत के पास कुछ बचना ही नहीं था परंतु फिर भी दु:खियों की भीड़ बढ़ती जा रही थी। कहानी का भावार्थ इतना ही है कि दु:खियों के दु:खों को दूर करो लेकिन जब आप ही नहीं रहेंगे तो दु:ख मिटायेंगे कैसे? इसलिए अपने को ठीक-ठाक रखकर ही दूसरों को सुखी बनाया जा सकता है।

इस मृत्युलोक में यथा राजा-रानी तथा प्रजा सभी तन, मन, धन, जन किसी न किसी प्रकार से दु:खी अवश्य हैं इसीलिए यह कल-कारखानों का युग या कलहयुग या दु:खधाम है। यह सर्वविदित है कि कर्मबंधनों में बंधे हुए इस चराचर जगत में सभी को कर्मों का फल मिलना ही है। अच्छे कर्मों का फल अच्छा तथा बुरे कर्मों का परिणाम सदैव बुरा ही होता है, चाहे वह बहुत बाद में ही क्यों न निकले। मनुष्य के विकार, जिनमें पाँच महाभूत – काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार के अलावा ईर्ष्या, घृणा, द्वेष इत्यादि की लंबी सेना है, उसे दिन-रात दु:खी किये रहते हैं।

हमें आदत ही पड़ी हुई है लोभ, मोह की जिसके कारण बुद्धि संकीर्ण होकर सिर्फ अपने और जिन्हें अपना समझती है उन्हीं के उत्थान या कल्याण के बारे में सोचती है और कर्म करने को प्रेरित करती है। ऐसे में ज़रा कोई दर्पण दिखाकर तो देखे हमें! बताये ज़रा कोई हमारी कमियों को! हम उसके आदि, मध्य और अंत का सारा इतिहास और भूगोल उसे बताने का हर संभव प्रयत्न करते हैं। हमें एक आदत और भी है कि हम जो हैं वह नहीं दिखना चाहते लेकिन हम जो नहीं हैं वह जानने, सुनने और देखने के आदी हो चुके हैं अर्थात् हमारी खुशी का बटन दूसरों के हाथों में है। जब वे चाहें हमें गुब्बारे की तरह गैस भरकर खुशी में फुला दें और हवा में ऊँचा उड़ा दें और जब चाहें तब वे गुब्बारे से गैस निकालकर हमें उदास या दु:खी कर दें।

बाह्य आवरण में खुशी तलाशी जा रही है तो सदैव खुश कहाँ से रह सकेंगे? सर्दी में समय से या रोज़ स्नान नहीं करेंगे, खाना भी ऐसा कि जिसे खाने के बाद शरीर से सिवाय दुर्गन्ध के कुछ भी निकलेगा नहीं, संकल्प और कर्म भी ऐसे कि जो शरीर का ओरा या प्रकाश का कार्ब है, वह भी दूषित हो, फिर इत्र और क्रीम लगाकर सुगंधित बनने का प्रयास करते हैं। भगवान की प्रतिमा के आगे या चर्च में, गुरुद्वारे में जाकर अपने आपको खल (दुष्ट) कहेंगे, अपने पापों का वर्णन वहाँ तो कर लेंगे लेकिन यदि उन्हीं पापों को कोई उन्हें बता दे तो जानी-दुश्मन बन जाते हैं। एक धनवान व्यक्ति सुबह-सुबह पूजा-स्थल पर गया और कहने लगा कि मैं तो बहुत बुरा हूँ, मैंने उस व्यक्ति की हत्या कर दी है और उसका सारा माल खज़ाना अपना बना लिया है, मुझे माफ करना। एक दूसरा व्यक्ति भी वहाँ खड़ा हुआ था। सेठ अपना समाचार सुनाकर वापिस मुड़े तो उन्होंने उस व्यक्ति को देखा। उनके चेहरे की हवाइयाँ उड़ गईं। उन्होंने अपनी जेब से पिस्टल निकाली और उसके कान पर रखते हुए पूछा, तुमने मेरी बात सुनी तो नहीं और यदि सुनी हो तो किसी से भी न कहना, नहीं तो इसकी सभी गोलियाँ तुम्हारे भेजे में समा जायेंगी। तो यह होती है हमारी स्थिति, हम बुतों के आगे या खाली स्थानों पर उन सब कर्मों का वर्णन कर देते हैं जहाँ किसी प्रत्युत्तर की आशा न हो परंतु यदि उन्हीं कर्मों का खाता हमें कोई खोल कर दिखा दे तो ...? बाथरूम से लेकर शयनकक्ष तक मुखड़ा देखने वाले दर्पण मिल सकते हैं, आते-जाते, उठते-बैठते उनमें अपने मुख पर दाग या धब्बा भी देख लेते हैं परंतु सवाल यह है कि ज्ञान का दर्पण, अपने अन्तर्मन का दर्पण, स्वचिंतन या स्वदर्शन का सुदर्शन कितना हम अपने पास रखते हैं? फिर कहते हैं कि दु:ख मिल रहा है या दु:खी हो रहे हैं।

जब जीवन ब्रह्मा बाबा की तरह साकार में रहते हुए भी अशरीरी या आकारी बन जाता है, अंग-अंग जब पवित्र और शीतलता प्रदान करने वाले हो जाते हैं, जब कर्मेन्द्रियों की चंचलता पूर्णत: समाप्त होकर स्वराज्य अधिकारी अवस्था हो जाती है और कमल की तरह जीवन संसार में रहते हुए भी न्यारा या अलिप्त हो जाता है तब दु:खों को दूर करने की भावना बलवती हो जाती है और दु:ख देने वाले कर्मों को देखकर भी शुभ भावना ही शेष रह जाती है। जिसे स्थूल वस्तु और व्यक्ति से कुछ भी पाने की कामना शेष नहीं रह जाती है तो उसे भला कौन दु:खी कर सकता है? जिसके शब्दकोष में घृणा, द्वेष, क्रोध, काम, निंदा, पराजय जैसे शब्द ही न हों तो भला उसे दु:खी कौन कर सकेगा? जिसे किसी से प्रशंसा, जय, स्तुति, मान, शान का सामान लेने की इच्छा ही न हो तो वह भला दु:खी कैसे हो सकता है? जिसका परमात्मा के अलावा कोई विशेष अपना है ही नहीं, सभी अपने हैं, ऐसा चंदन की तरह पवित्र मानस वाला, विषधरों को अपना बनाने वाला कष्ट में या दु:ख में कैसे रह सकता है?

लेकिन हम कष्टकारी चीज़ें छोड़ना ही नहीं चाहते और सुखकारी चीज़ें धारण करना ही नहीं चाहते। दूसरों के परिवर्तन की आशा में जिंदा हैं लेकिन स्वपरिवर्तन करना ही नहीं चाहते। सोचते हैं, अच्छा बनकर संसार में रहना ही कठिन है। निमित्त ब्रह्मा बाबा और दादियों ने दु:खदायी स्थितियों को भी सुखदायी स्थिति में बदलने का अद्भुत कार्य कर दिखाया है और ऐसे सुखदायी समाज की नींव रखी है जिसमें राजा-रानी तथा प्रजा किसी को किसी भी प्रकार का दु:ख, रोग, शोक नहीं होगा। तो आइये, ऐसे दु:खमुक्त और सुखदायी समाज और विश्व के निर्माण में अपने शुभ संकल्पों से सहयोगी बनें।

❖